'पितर' संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा

- डॉ. अनीता सुधीर बोथरा

प्रस्तावना :

वैदिक या ब्राह्मण परम्परा और श्रमण परम्परा-ये दोनों परम्पराएँ भारत में प्राचीन काल से समान्तर रूप में प्रवाहित, अलग अलग परम्पराएँ हैं - यह सत्य विद्वज्जगत् में प्रायः मान्य हुआ है । इन परम्पराओं की अलगता दिखानेवाले जो अनेक छोटे-बडे तथ्य सामने उभरकर आते हैं, उसमें 'पितर' संकल्पना और उससे जुडी हुई श्राद्ध, तर्पण तथा पिण्ड ये संकल्पनाएँ भी आती है ।

जैन समाज आरम्भ से संख्या में अल्प है । विविध कारणवश पूरे भारतभर में बडे शहरों से लेकर छोटे गाँव या बस्तियों तक बिखरा हुआ है । अतएव हिन्दु समाज का दैनन्दिन सान्निध्य उसे प्राप्त हुआ है । धार्मिक और व्यावसायिक दोनों कारणों से सहिष्णु तथा शान्तताप्रेमी जैन समाज पर, हिन्दुओं की अनेक धार्मिक रूढियों का तथा विधिविधानों का प्रभाव पडना बहुत ही स्वाभाविक बात है । इसी वजह से हिन्दु संस्कार, व्रत-वैकल्य, पूजा-अर्चा आदि कर्मकाण्डप्रधान विधि-विधान, जैनियों ने भी थोडे संक्षिप्त रूप में तथा पंचपरमेष्ठी की महत्ता कायम रख के जैन धर्मानुकूल बनाए । हिन्दु पुराणों की तरह, जैन पुराणों की रचना करके विशिष्ट घटना, व्यक्ति से सम्बन्धित विविध व्रत तथा अनेक उद्यापन आदि भी प्रचलित हुए । तथापि 'पितर' संकल्पना सिद्धान्तों के बिलकुल ही विपरीत होने के कारण उन्होंने नहीं अपनायी ।

'पितर' संकल्पना के उल्लेख प्रायः सभी श्रुति, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत तथा पूर्वमीमांसा दर्शन इ. ग्रन्थों में विपुल मात्रा में दिखायी देते हैं । इन संकल्पनाओं पर आधारित स्वतन्त्र ग्रन्थो की रचना भी हुई है। ब्राह्मण परम्परा के अनेकविध ग्रन्थों के पितरसम्बन्धी उल्लेखों कि सूचि कृपया

ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कॉन्फरन्स (AIOC), कुरुक्षेत्र, अधिवेशन ४४, जुलै २००८ में प्रस्तुत किया गया शोधपत्र ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट में देखे । इससे 'पितर' संकल्पना की दृढमूलता तथा व्याप्ति दिखायी देती है ।

(अ) कुछ प्रातिनिधिक ग्रन्थों में उल्लिखित पितर सम्बन्धी मान्यताएँ :

(१) ऋग्वेद :

ऋग्वेद में यम वैवस्वत को पितृसम्राट कहा है । यम पितरों का मुख्य है । अंगिरस इ. पितरों के कई गण हैं । यम का सम्बन्ध यज्ञ से जोडा गया है । अनेक प्रकार के पितर देवताओं के नाम दिये गये हैं । पुरातन पितरों को यम तथा वरुण का दर्शन करने की बिनती की है । 'पुण्यवान पितर स्वर्लोक में जाएँ तथा स्वर्लोक के पितर स्वस्थान में जाएँ' इस प्रकार की भावना व्यक्त की है । यज्ञफल देने में पितरों का भी सहभाग होता है। भक्तों की पूजा से पितर सन्तुष्ट होते हैं तथा अपराध से क्रुद्ध होते हैं । 'मृतदेह में नवीन जीव डालकर तू पितरों को सौपा दे', इस प्रकार की प्रार्थना अग्नि से की है । 'स्वच्छन्द' पितरों को पाचारण किया है ।[१]

(२) तैत्तिरीय ब्राह्मण :

तैत्तिरीय ब्राह्मण में पितर, पिण्डदान, पिण्डपितृयज्ञ, पितृप्रसाद, पितृलोक इ. के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है । पितर देवात्मक और मनुष्यात्मक है । 'देवात्मक पितर' पितृलोक के स्वामी हैं । मरण के उपरांत पितृलोक का उपभोग लेने के लिए जो पितृलोक को प्राप्त होते हैं उनको 'मनुष्यात्मक पितर' कहते हैं । देवात्मक पितरों की तृप्ति के बाद ही मनुष्यात्मक पितरों को तृप्त करना चाहिए ।[२]

(३) मनुस्मृति :

मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के आधार से निम्नलिखित तथ्य दृग्गोचर होते हैं - मनुस्मृति के काल में पितृतर्पण तथा श्राद्धविधि समाज के चारों वर्णों द्वारा किये जाते थे । सब लोगों से विधि करानेवाला समाज, ब्राह्मण पुरोहित समाज था । ऋग्वेद में पितरों को ध्यान में रखकर सामान्य रूप से किया हुआ आवाहन अब अपने अपने कुल के तीन मृत पुरुषों को

---

१. ऋग्वेद १०.१४;१०.१५; १०.१६

२. तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रपाठक ३, अनुवाद १०, पृ. ६५ से ६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किए हुए आवाहन के रूप में दिखायी देता है । ब्राह्मणपितर, क्षत्रियपितर, वैश्यपितर तथा शूद्रपितर इस प्रकार की पितरों की चातुवर्णव्यवस्था की गयी है । पितृपूजा तथा श्राद्धविधि में विशिष्ट अन्नविषयक उल्लेख की मात्रा बहुत ही बढ गयी है जब कि ऋग्वेद में उसका उल्लेख भी नहीं है । ब्राह्मणभोजन द्वारा पितरों को तृप्त करना यह संकल्पना नये सिरे से उद्धृत की गयी है। पितरों की अक्षय तृप्ति कराने हेतु विविध प्रकार के मांस का आहार बहराने के उल्लेख हैं । दैनन्दिन, मासिक, त्रैमासिक तथा वार्षिक आदि श्राद्ध के अनेक प्रकार दिये हैं । पितृतर्पण करानेवाले पुरोहित का श्रेष्ठत्व बढ गया है । भोजन करते हुए ब्राह्मणों को किन किन प्राणियों से तथा लोगों से बचना है इसके नियम, उपनियम दिये हैं । शूद्रों को श्राद्ध भोजन के उच्छिष्ट का भी अधिकारी नहीं माना है । श्राद्ध विधि में पुत्र की प्रधानता होने के कारण पितरों की तृप्ति करानेवाले पुत्र की कामना की है ।[३]

(४) स्मृतिचन्द्रिका :

स्मृतिचन्द्रिका के 'श्राद्धकाण्ड' के अन्तर्गत श्राद्धमहिमा, श्राद्धभेद, श्राद्धाधिकारी, श्राद्धकाल, श्राद्धभोजनीयब्राह्मण, पैतृकार्चनविधि, पिण्डदानविधि इ. अनेक विषय विस्तार से वर्णन किये हैं ।[४]

(५) चतुर्वर्गचिन्तामणि :

चतुर्वर्गचिन्तामणि के प्रथम भाग के १ से ९ अध्याय में श्राद्धविषयक विचार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किये हैं । श्राद्धविधि, श्राद्धमहात्म्य, श्राद्धक्रिया, श्राद्धतर्पण, पितृतृप्ति, पितृगण, पितरों के प्रकार, पिण्डदान, ब्राह्मणभोजन, श्राद्धपदार्थ इ. विषय चर्चित किये हैं । 'श्राद्ध' शब्द को 'योगरूढ' शब्द कहा है । श्राद्ध पर अनेक आक्षेप भी उपस्थित किये हैं और अपनी तरफसे उनका निराकरण करने का प्रयत्न भी किया है ।[५]

(६) मार्कण्डेयपुराण :

मार्कण्डेयपुराण में अध्याय २८ से ३० तथा ९२ से ९४ इन अध्यायों में पितृपूजा तथा श्राद्ध का विस्तृत वर्णन है । उसमें कहा है कि चारों वर्णों

३. मनुस्मृति अध्याय ३

४. स्मृतिचन्द्रिका श्राद्धकाण्ड (३)

५. चतुर्वर्गचिन्तामणि अध्याय १ से ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पितर अलग अलग हैं और उनके लिए बनाये जानेवाले अन्नपदार्थ भी अलग अलग हैं । यहाँ पितृगणों की संख्या ३१ कही गयी है । वृक्षसहित सभी योनियों में पितर जा सकते हैं इसका जिक्र किया गया है । 'रुचि' नामक ब्रह्मचारी और पितर इनका विस्तृत संवाद दिया है । इस संवाद में पितर, विरक्त स्वभाव के ब्रह्मचारी रुचि को विवाह और पुत्रोत्पत्ति का महत्त्व बताते हैं । पितृतर्पण की महत्ता पितरों के मुख से ही रुचि को बतलायी है । मनु के जन्म की कथा तथा स्वर्ग में किये गये पितरों का श्राद्ध भी इसमें अंकित है । मांसभक्षण का भी इसमें उल्लेख हैं ।[६]

(७) वायुपुराण :

वायुपुराण में पितरों का सम्बन्ध सोमरस से जोडा हुआ है । पितरों के विविध प्रकार दिये हैं । अग्निष्वात्त और बर्हिषद ये पितरों के दो प्रकार प्रायः सभी ग्रन्थों में अंकित हैं । इसके सिवा ७ पितृगणों के भी नाम है ।[७]

(८) मत्स्यपुराण :

मत्स्यपुराण में पितरों के दिव्यरूप, दिव्यमाला, अलङ्कार तथा कामदेव समान कान्ति का उल्लेख है । यहाँ भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ऐसे चार प्रकार के पितर दिये गये हैं । 'धार्मिक पितर स्वर्ग से भी ऊपर के ज्योतिष्मत् नाम के स्वर्ग में बसते हैं' - ऐसा कथन किया है ।[८]

(९) कूर्मपुराण :

कूर्मपुराण में कहा है कि श्राद्ध के दिन पितृगणों का उस स्थान पर अवतरण होता है । वे वायुरूप में स्थित होते हैं । ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं । भोजन के उपरांत परमगति को प्राप्त होते हैं । श्राद्धविधि करानेवाले ब्राह्मणों के बारे में यहाँ कुछ निकष दिये हैं । अगर विप्र दुष्ट है तो पितर पापभोजन करता है और अगर विप्र कलही है तो मलभोजन करता है ।[९]

इस प्रकार कुछ प्रातिनिधिक ग्रन्थ चुनकर पितरविषयक विचारों का

---

६. मार्कण्डेयपुराण अध्याय २८ से ३० तथा अध्याय ९२ से ९४

७. वायुपुराण ३८.८, १६, १७, २२, २३, २७, ५९, ६१, ६२, ८५ से ८८

८. मत्स्यपुराण अध्याय १४, १५, १६

९. कूर्मपुराण द्वितीय खण्ड, अध्याय २१, २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो संक्षिप्त चित्रण प्रस्तुत किया है उससे मालूम पडता है कि ऋग्वेद में यमरूप पितर को सर्वाधिक महत्त्व है । उसका यज्ञ से सम्बन्ध जोडा है । स्मृति तथा पुराण ग्रन्थों में धीरे धीरे पितरों के साथ साथ ही श्राद्धविधि, पिण्ड तथा तर्पण का महत्त्व भी बढ गया । उसके अनन्तर स्मृतिसम्बन्धी स्वतंत्र ग्रन्थों में श्राद्ध तथा उसके उपप्रकारों की मानो बाढ सी आ गयी ।

(ब) पितरसम्बन्धी मान्यताओं में सुसूत्रता का अभाव :

ब्राह्मण परम्परा के विविध मूलगामी ग्रन्थों में तथा स्वतन्त्र ग्रन्थों में पितर तथा पितृलोक सम्बन्धी विविध मत व्यक्त किये हैं । विविध आशंकाएँ उपस्थित की हैं । अतार्किक एवं असम्भव लगनेवाले विवेचनों की उपपत्ति लगाने का भी प्रयास किया गया है । इन सब में एक समान धागा यही है कि किसी भी दो ग्रन्थों में साम्य के बजाय मतभिन्नता ही अधिक है । निम्नलिखित वाक्यों पर अगर नजर डाली जाएँ तो इसी तथ्य की पुष्टि होती है ।

◈ पुण्यवान पितर स्वर्लोक में जाएँ और स्वर्लोक के पितर स्वस्थान में जाएँ ।[१०] **इससे यह सूचित होता है कि कुछ पितर ही स्वर्लोक में जाते हैं और उसमें कुछ पितर स्वतन्त्र पितृलोक में जाते हैं ।**

◈ हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! 'स्वधापूर्वक' अर्पित मृतदेह में नया जीवन डालकर तुम पितरों को दे दो ।[११] **दग्ध मृतदेह को पुनः जीवित बनाकर अग्निदेव पितरों को अर्पित करता है ।**

◈ अथर्ववेद में देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि इन पाँच समाजों का निर्देश है ।[१२] तैत्तिरीय संहिता के एक मन्त्र से यह सूचित होता है कि देव, मनुष्य, पितर, असुर, राक्षस और पिशाच यह ६ भिन्न योनियाँ हैं ।[१३] पितरविषयक वैदिक, स्मार्त और पौराणिक साहित्य का आलोडन करके श्री.ना. गो. चापेकरजी ने यह सिद्धान्त सामने रखा है कि देव और मनुष्य के समान पितर नाम का एक समाज था ।[१४] **लेकिन**

---

१०. ऋग्वेद १०.१५.१
११. ऋग्वेद १०.१६.५
१२. ऋग्वेद १०.१६.५
१३. तैत्तिरीय संहिता २.४
१४. भारतीय संस्कृतिकोश पृ. ५६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध विसंगत उल्लेखों के कारण हम सुनिश्चित रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि यह इहलोक में होनेवाला एक समाज है या अंतरिक्ष में स्थित पितृलोकों में निवास करनेवाली एक योनि है।

◈ तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवों के, मनुष्यों के और पितरों के आयुर्मान के बारे में विवेचन दिया है। उसके आधार से पं. गणेशशास्त्री भिलवडीकरजी इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि पितृलोक इस भूतलपर होने की तनिक भी सम्भावना नहीं है। इतना ही नहीं तो पितृलोक हमारे सूर्यमाला में भी होने की संभावना भी नहीं है। अन्य सूर्यमाला में पितृलोक हो सकता है।[१५] **पितृलोक का एक निश्चित स्थान निर्दिष्ट न होने के कारण अभ्यासकों में भी मतभिन्नता दिखायी देती है।**

◈ पितरों का वर्गीकरण अन्यान्य प्रकार से दिया हुआ है। बृहदारण्यक में अयोनिसंम्भव पितरों का उल्लेख पाया जाता है।[१६] बर्हिषद, अग्निष्वात्त आदि नामनिर्दिष्ट पितर हैं। इसके अलावा सोमप, हविर्भुज, आज्यप और सुकालि इनका चार वर्णों के पितरों के रूप में निर्देश है। इन चारों के पिता भृगु, अंगिरस, पुलस्त्य और वसिष्ठ बताएँ हैं। अत्रिपुत्र, बर्हिषद दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, सुपर्ण, राक्षस और किन्नर इनके पितर है।[१७] तैत्तिरीय संहिता में उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ ऐसे तीन प्रकार के पितर बताएँ हैं।[१८] तैत्तिरीय ब्राह्मण[१९] में तथा वायुपुराण[२०] में देवपितर और मनुष्यपितर ऐसे दो प्रकार भी निर्दिष्ट किये हैं। विविध ग्रन्थों में आये पितरों के वर्णनों के आधार से विद्वानों ने पितरों के नित्य, नैमित्तिक और मर्त्य ऐसे तीन भेद किये हैं।[२१] **इस विवेचन से यह प्रतीत होता है कि पितरों के प्रकारों का विवेचन किसी एक सूत्र के आधार से नहीं किया है।**

---

१५. पितर व पितृलोक पृ. २, ३ १६. पितर व पितृलोक पृ. १३

१७. मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक ९६, ९७, ९८

१८. तैत्तिरीय संहिता २.६.१२

१९. तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रपाठक ३, अनुवाद १०, पृ. ६५ ते ६८

२०. वायुपुराण ३८.८६ २१. पितर व पितृलोक पृ. १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

◈ बृहदारण्यक में बताया है कि पितृलोक आनन्दमय है ।[२२] मार्कण्डेयपुराण में वर्णन किया है कि पितर देवलोक में, तिर्यग्योनि में, मनुष्यों में तथा भूतवर्गों में भी होते हैं । कोई पुण्यवान तो कोई पुण्यहीन होते हैं । वे सब क्षुधा के कारण कृश तथा तृष्णा से व्याकुल होते हैं । कर्मनिष्ठ पुरुष पिण्डोदक दान से इन सबको तृप्त करें ।[२३] **एक तरफ पितृलोक के आनन्दमयता की बात करना और दूसरी तरफ पिण्डोदक द्वारा उनके तृप्ति की बात करना इसमें कतई तालमेल नहीं है ।**

◈ ब्राह्मणों के लिए नित्य पंचमहायज्ञों का विधान है । उनमें एक पितृयज्ञ भी है ।[२४] इसका मतलब यह हुआ कि ब्राह्मणों के पितरों की नित्य तृप्ति का विधान है । क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र पितरों के बारे में इस प्रकार का विधान नहीं है । **इस प्रकार की तथा कई अन्य प्रकार की ब्राह्मण पक्षपातिता इन ग्रन्थों में स्पष्टतः दिखायी देती है ।**

◈ वेदकाल में यह माना जाता था कि मृतात्मा प्रेतदहन के बाद तत्काल पितरपद प्राप्त करता है । गृह्यसूत्रों के काल में इस कल्पना में परिवर्तन आये । उसमें कहा गया है कि देह छोडने के बाद मृतात्मा प्रेतयोनि में एक साल तक रहता है । इस अवस्था में अनन्त यातनाओं का भागी होता है । उसको पीडामुक्त करने के लिए एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण इ. श्राद्धों का विधान है । पौराणिक काल में एक अन्य संकल्पना सामने आयी । उनके अनुसार मृतात्मा शरीरदहन के बाद 'अतिवाहिक' नाम का सूक्ष्म शरीर धारण करता है । इस अवस्था में उसको क्षुधा, तृष्णा आदि क्लेश होते हैं । पिण्डदान आदि के बाद अतिवाहिक अवस्था से मुक्त होकर उसे 'प्रेतशरीर' प्राप्त होता है । उसके बाद एकोद्दिष्ट आदि करने से प्रेतशरीर नष्ट होकर पितरपद को प्राप्त होता है ।[२५] **मृतात्मा पितर बनने की प्रक्रिया के बारे में वैदिक परम्परा में इतने सारे बदलाव दिखायी देते हैं ।**

◈ मत्स्यपुराण में पितरों के वायुरूप होने का उल्लेख पाया जाता है ।[२६]

---

२२. पितर व पितृलोक पृ. १३
२३. मार्कण्डेयपुराण २३.४९ ते ५२
२४. तैत्तिरीय संहिता २.४; मनुस्मृति ३.८२
२५. भारतीय संस्कृतिकोश पृ. ५६७
२६. मत्स्यपुराण १७.१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्कण्डेयपुराण में प्रार्थना के अनन्तर पितरों का तेज बाहर निकलना और उनके पुष्प, गन्ध, अनुलेपन से भूषित होने का निर्देश किया है।[२७] पण्डित भिलवडीकरजी ने कहा है कि पितर मुख्यत: अमूर्त और वायुरूप होते हैं और तर्पण तथा श्राद्ध के समय मूर्तिमान बनकर आते हैं ।[२८]

(क) 'पितर' संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा :

ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक तथा अतिप्राचीन काल से आजतक पूरे भारत वर्ष में पितर, तर्पण, पिण्ड तथा श्राद्ध ये कल्पनाएँ दृढमूल दिखायी देती है । जैन परम्परा में प्राचीन काल से लेकर आजतक अपने आचार-व्यवहार में इन संकल्पनाओं को अवसर नहीं दिया है । इसके मुख्यत: दो कारण है ।

१. पितर संकल्पना का सुव्यवस्थित न होना ।

२. जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि इस व्यवहार के लिए अनुकूल न होना ।

इन दोनों कारणों का विशेष ऊहापोह यहाँ किया है ।

(१) सुसूत्रता का अभाव :

इसके पूर्व किये हुए विस्तृत विवेचन में इस मुद्दे पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है । अत: यहाँ पुनरुक्ति नहीं कर रहे हैं ।

(२) यज्ञों की प्रधानता :

ऋग्वेद में पितरों का सम्बन्ध यज्ञ से जोडा हुआ है । मनुस्मृति में तो पंचमहायज्ञों में पितृयज्ञ का स्पष्टत: उल्लेख है । जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने यज्ञीय परम्परा का जमकर विरोध किया है । 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के ८ वे शतक में और 'स्थानांग' के ४ थे स्थान में नरकगति के बन्ध के चार कारण दिये हैं ।

(१) महाआरम्भ (अमर्यादित हिंसा) करनेसे (२) महापरिग्रह

---

२७. मार्कण्डेयपुराण अध्याय ९४, श्लोक १४, १५

२८. पितर व पितृलोक पृ. १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अमर्यादित संग्रह) करने से, (३) पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से, (४) मांसभक्षण से ।[२९]

यहाँ यज्ञनिन्दा स्पष्ट रूप में नहीं की है । लेकिन 'धर्मोपदेशमाला-विवरण' में इन चार कारणों का सम्बन्ध स्पष्टतः यज्ञीय कृति से जोडकर उसकी निन्दा की है ।[३०]

(३) वेदाध्ययन, वेदों का तारकत्व तथा ब्राह्मणभोजन का महत्त्व :

उत्तराध्ययन के १४ वे इषुकारीय अध्ययन में एक पुरोहित के दो पुत्रों का संवाद प्रस्तुत किया है । पुरोहित अपने विरक्त पुत्रों से कहता है-

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया ! ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ।।[३१]

इस गाथा में वेदाध्ययन का महत्त्व, ब्राह्मणभोजन, पुत्रोत्पत्ति आदि गृहस्थसम्बन्धी क्रियाओं की अनिवार्यता पुरोहित के वचनद्वारा दर्शायी है ।

पुरोहितपुत्र जवाब देते हैं कि-

वेया अहीया न हवंति ताणं, भुत्ता दिया निंति तमं तमेण ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ? ।।[३२]

इस गाथा के द्वारा वेदों का तारणस्वरूप न होना, भोजन दिये हुए ब्राह्मणों का अधिकाधिक अज्ञानद्वारा यजमान को गुमराह करना, गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता न होना इ. बातें स्पष्ट रूप से कही हैं ।

ब्राह्मणों को दिया हुआ भोजन पितरों तक पहुँचकर वे तृप्त हो जाते हैं इस मान्यता में जो अतार्किकता और असम्भवनीयता है उसका निर्देश इस संवाद में स्पष्टतः दिखायी देता है । इसलिए यद्यपि यहाँ पितरों का स्पष्टतः निर्देश नहीं है तथापि उस संकल्पना का निषेध ही यहाँ अन्तर्भूत या सूचित है ।

---

२९. व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) ८.४२५; स्थानांग ४.६२८

३०. धर्मोपदेशमालाविवरण पृ. ३०-३१

३१. उत्तराध्ययन १४.९

३२. उत्तराध्ययन १४.१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) भोजनसम्बन्धी मान्यता :

ब्राह्मण परम्परा के विविध व्रत, वैकल्य तथा उद्यापन और विशेषत: श्राद्धविधि में भोजन की प्रचुरता होती है । श्राद्ध के दिन पितरों को अर्पित किया हुआ भोजन किस प्रकार का होना चाहिए, किस प्रकार का नहीं होना चाहिए इसकी विस्तारपूर्वक चर्चा स्मृति तथा पुराण ग्रन्थों में पायी जाती है। पितरों को श्राद्धान्न अर्पित करके उर्वरित अन्न तथा ब्राह्मणों के उच्छिष्ट अन्न का उल्लेख भी पाया जाता है ।

जैन परम्परा में जो भी धार्मिक विधिविधान या व्रत है उसमें प्राय: जप, तप, स्वाध्याय, सामायिक तथा उपवास आदि की प्रधानता होती है ।[३३] यद्यपि आधुनिक काल में जैनियों में भी व्रत के उद्यापन के दिन भोजन आदि बनाएँ जाते हैं तथापि उनको प्राचीन ग्रन्थाधार नहीं है । ये प्रथाएँ स्पष्टत: ब्राह्मण परम्परा के सम्पर्क से प्रचलित हुई हैं ।

गृहस्थों ने खुद के लिए भोजन बनाकर ईश्वर को अर्पण करना तथा प्रसाद के रूप में उसका ग्रहण करना - इस प्रथा का प्रचलन जैन परम्परा में नहीं है । अत: मृत पितरों को भोजन अर्पित करना तथा उसका प्रसादस्वरूप ग्रहण करना भी उनको मान्य नहीं है ।

(५) 'ब्राह्मण' शब्द का विशेष अर्थ:

ब्राह्मण परम्परा में ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक तथा आज भी पितृतर्पण तथा श्राद्धविधि ब्राह्मणों के द्वारा ही मन्त्रपूर्वक किये जाते हैं । धर्मसम्बन्धी कार्यों में ब्राह्मण, पुरोहितों का मध्यस्थ होना, जैन तथा बौद्ध दोनों श्रमण परम्पराओं को कतई मान्य नहीं था । श्रमण परम्परा में यह बार-बार निर्दिष्ट किया है कि 'ब्राह्मणत्व' जाति के आधार से नहीं पाया जाता ।[३४] उत्तराध्ययन में 'उसे हम ब्राह्मण कहते हैं' (तं वयं बूम माहणं) इस प्रकार के उल्लेख करके सच्चे ब्राह्मणों के लक्षण दिये हैं । क्रोधविजयी, अनासक्त, अलोलुप, अनगार, अकिंचन तथा ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले व्यक्ति को

३३. दशवैकालिक ८.६१, ६२

३४. उत्तराध्ययन २५. ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही उत्तराध्ययन में ब्राह्मण कहा है ।[३५]

ब्राह्मण शब्द का विशिष्ट जातिवाचक अर्थ बदलने से यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितृश्राद्ध आदि विधि का जैनियों में प्रचलन न होना बिलकुल ही स्वाभाविक है ।

(६) जातिप्रधान वर्णव्यवस्था :

मनुस्मृति तथा मार्कण्डेयपुराण में पितरों की जातिप्रधान वर्णव्यवस्था का जिक्र किया है ।[३६] ब्राह्मणग्रन्थों में निहित जातिप्रधान वर्णव्यवस्था के बदले जैन परम्पराने कर्मप्रधान वर्णव्यवस्था को महत्त्व दिया है ।[३७] इससे भी बढकर विश्व के समूचे जीवों को आध्यात्मिक प्रगति के अधिकारी मानकर एक दृष्टि से अनोखी समानता प्रदान की है ।[३८]

जैन परम्परा के अनुसार मृत जीव अपने कर्मानुसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव आदि गतियों में जाकर संसारभ्रमण करता है ।[३९] अतः जातिप्रधान या जातिविहीन किसी भी वर्णव्यवस्था में उन जीवों को नहीं ढाला जाता ।

(७) 'पिण्ड' शब्द का विशिष्टार्थबोधक प्रयोग :

'पिण्ड' शब्द का मूलगामी अर्थ 'गोलक' है । लोकरूढि में यह शब्द किसी भी अन्नपदार्थ के और मुख्यतः चावल के गोलक के लिए प्रयुक्त किया जाता है । ब्राह्मण परम्परा में पितरों को श्राद्ध के समय अर्पण किये गये चावल के गोलक के लिए ही वह मुख्यतः प्रयुक्त हुआ है । चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ में इस शब्द को 'योगरूढ' ही माना है ।[४०] ब्राह्मण परम्परा में पिण्ड शब्द के साथ पितर संकल्पना, श्राद्ध संकल्पना निकटता से जुडी हुई है ।

---

३५. उत्तराध्ययन २५. १९ से ३२

३६. मनुस्मृति ३.९६ से ९९; मार्कंडेयपुराण अध्याय ९३.२० से २३

३७. उत्तराध्ययन २५.३३

३८. आचारांग १.२.३.६५; १.४.२.२३; उत्तराध्ययन १९.२६; दशवैकालिक ६.१०; मूलाचार २.४२

३९. स्थानांग ४.२८५

४०. चतुर्वर्गचिन्तामणि अध्याय ४, पृ. २७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पिण्ड' शब्द से जुडे हुए ब्राह्मण परम्परा के सब पितरसम्बन्धी अर्थवलय जैन परम्पराने दूर किये हैं। साधु प्रायोग्य प्राशुक आहार को ही 'पिण्ड' कहा है। जैन साहित्य के प्राचीनतम अर्धमागधी ग्रन्थों में, पिण्ड शब्द का 'साधुप्रायोग्य भोजन', इस अर्थ में प्रयोग दिखायी देता है। आचारांग और दशवैकालिक दोनों ग्रन्थों में 'पिण्डैषणा' नामक स्वतन्त्र अध्ययनों की योजना की गयी है। उनमें साधुप्रायोग्य आहार की विशेष चिकित्सा की गयी है।[४१] आ. भद्रबाहु द्वारा विरचित 'पिण्डनिर्युक्ति' ग्रन्थ में भी इसी अर्थ में पिण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है।

साधु के उद्देश्य से न बनाया हुआ, शुद्ध और प्रासुक आहार साधु पाणिपात्र में अथवा एक ही भिक्षापात्र में इकट्ठा ही ग्रहण करते हैं। अतः विविध प्रकारके भोजन का मानों पिण्ड ही बन जाता है। रसास्वाद की दृष्टि से परे रहकर ही, निरासक्त दृष्टि से साधु पिण्ड का आहार करते हैं।

'पिण्ड' शब्द के इस विशेष अर्थ में किये हुए प्रयोग से यह साफ दिखायी देता है कि पितरों के उद्देश्य से बने हुए पिण्ड तथा मूलतः पितर संकल्पना ही जैनियों को मान्य नहीं है।

(८) 'श्रद्धा' तथा 'श्राद्ध' शब्द के अर्थ :

चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में, स्मृतिचन्द्रिका, मनुस्मृति, बौद्धायनसूत्र तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण इन ग्रन्थों में श्राद्ध शब्द की व्युत्पत्ति विस्तार से दी है। वहाँ स्पष्टतः बताया है कि जो भी कार्य श्रद्धापूर्वक किया जाता है वह 'श्राद्ध' है। उसके अनन्तर तिल, दर्भ, मंत्र, हविर्भाग, पिण्डदान आदि श्रद्धापूर्वक देने का विधान है।

जैन परम्परा ने श्रद्धा और श्राद्ध दोनों शब्दों का प्रयोग विपुल मात्रा में किया है। श्रद्धा में निहित मूलगामी अर्थ को ही प्राध्यान दिया है। उदक, तिल, दर्भ आदि पदार्थ देने के विधि को कहीं भी श्राद्ध नहीं कहा है। जैन परम्परा में जिनप्रतिपादित तत्त्व पर श्रद्धा रखनेवालो को 'सड्ढी' याने 'श्रद्धावान' कहा है। यद्यपि यह विशेषण साधु और गृहस्थ दोनों के लिए

---

४१. आचारांग २.१.१ से ११; दशवैकालिक अध्याय ५, उद्देशक १ और २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उचित है तथापि 'सड्ढी' शब्द का प्रयोग प्रमुखता से श्रावक, उपासक या गृहस्थ के लिए ही हुआ है ।[४२] 'श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र' में श्रावक के द्वारा नित्य आचरित अनुष्ठानों का ही विवेचन है ।

ब्राह्मण परम्परा में प्रचलित शब्दों को स्वीकार करके उनको नये अर्थ प्रदान करने की प्रथा जैन परम्परा में काफी मात्रा में दिखायी देती है ।

(९) मृत जीवों का विविध गतियों में गमन :

मार्कण्डेयपुराण में स्पष्टतः कहा है कि मृत मनुष्य देवलोक में, तिर्यग्योनि में, मनुष्यगति में तथा अन्य भूतवर्ग में भी जाते हैं ।[४३] 'मरा हुआ प्रत्येक जीव पहले पितृलोक में ही जाता है', इस प्रकार का निःसन्दिग्ध कथन ब्राह्मण परम्परा के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है । इसके सिवाय मनुष्येतर जीव मृत्यु के उपरान्त पितृलोक में जाते हैं या नहीं इसका भी निर्देश ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं है ।

जैन परम्परा के अनुसार गतियाँ चार हैं ।[४४] इसके अतिरिक्त पितृगति नाम की अलग गति या पितृलोक नाम का अलग लोक नहीं बताया है । जैनियों के कर्मसिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव उसके कर्म के अनुसार उचित गति प्राप्त करता है ।[४५] पितरों के कुछ कुछ उल्लेखों से यह सम्भ्रम उत्पन्न होता है कि पितृलोक को एक प्रकार का देवलोक क्यों नहीं माना जाय ?

जैन परम्परा में देवों के अनेक प्रकार, उपप्रकार तथा अलग अलग निवासस्थान निर्दिष्ट हैं ।[४६] जैसे कि मनुस्मृति में निर्दिष्ट है ।[४७] प्रायः उसी प्रकार जैन शास्त्र में भी किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ व्यन्तरनिकाय माने गये हैं ।[४८] तथा ज्योतिष्क देवों का भी निर्देश है ।[४९] पितृगतिप्राप्त कुछ पुण्यवान पितरों को अगर विशिष्ट प्रकार

---

४२. आचारांग १.३.८०; १.५.९६ सूत्रकृतांग १.१.६०; २.१.१५
४३. मार्कण्डेयपुराण २३.४९ से ५२
४४. स्थानांग ४.२८५
४५. तत्त्वार्थसूत्र ६.१६ से २०
४६. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४
४७. मनुस्मृति अध्याय ३.९६
४८. तत्त्वार्थ ४.१२
४९. तत्त्वार्थ ४.१३

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org